Think IAS...

दृष्टि The Vision

Think Drishti

## संघ लोक सेवा आयोग (UPSC)

# हिन्दी साहित्य

### प्रश्नपत्र–1 (खंड–ख)

### (हिन्दी साहित्य का इतिहास)

भाग 3

- हिंदी उपन्यास का विकास
- हिंदी कहानी का विकास
- हिंदी नाटक का विकास
- हिंदी रंगमंच और उसका विकास
- हिंदी निबंध का विकास
- हिंदी आलोचना/समीक्षा/समालोचना
- हिंदी गद्य की अन्य विधाएँ

दूरस्थ शिक्षा कार्यक्रम (Distance Learning Programme)

Code: CSHL04

## संघ लोक सेवा आयोग (UPSC)

# हिन्दी साहित्य

### प्रश्नपत्र-1 (खण्ड-ख)

### (हिन्दी साहित्य का इतिहास)

### भाग-3

641, प्रथम तल, डॉ. मुखर्जी नगर, दिल्ली-110009
दूरभाष: 011-47532596, 8750187501
टोल फ्री : 1800-121-6260
**Web:** www.drishtiIAS.com
**E-mail :** online@groupdrishti.com

पाठ्यक्रम, नोट्स तथा बैच संबंधी updates निरंतर पाने के लिये निम्नलिखित पेज को "like" करें
www.facebook.com/drishtithevisionfoundation
www.twitter.com/drishtiias

UPSC DLP

# विषय सूची (Contents)


| | | |
|---|---|---|
| **13.** | **हिन्दी उपन्यास का विकास** | **5–40** |
| | **13.1** उपन्यास के तत्त्व | 5 |
| | **13.2** उपन्यास | 8 |
| | **13.3** उपन्यास और यथार्थवाद में सबंध | 9 |
| | **13.4** हिन्दी का पहला उपन्यास | 11 |
| | **13.5** हिन्दी उपन्यास का विकास | 11 |
| | **13.6** प्रेमचंदयुगीन उपन्यास | 13 |
| | **13.7** प्रेमचंद पश्चात् युग | 17 |
| | **13.8** हिन्दी के विशिष्ट उपन्यासकार | 27 |
| **14.** | **हिन्दी कहानी का विकास** | **41–70** |
| | **14.1** कहानी का परिचय | 41 |
| | **14.2** कहानी और उपन्यास में तुलना | 41 |
| | **14.3** हिन्दी कहानी की विकास यात्रा | 42 |
| | **14.4** हिन्दी कहानी में दलित चेतना व विमर्श | 59 |
| | **14.5** हिन्दी कहानी और स्त्री विमर्श | 60 |
| | **14.6** हिन्दी कहानी की वर्तमान स्थिति | 64 |
| | **14.7** युवा कहानी | 65 |
| | **14.8** हिन्दी कहानी में जादुई यथार्थवाद | 66 |
| | **14.9** हिन्दी के अन्य प्रमुख कहानीकार | 67 |
| **15.** | **हिन्दी नाटक का विकास** | **71–94** |
| | **15.1** हिन्दी नाटक विधा का आरंभ | 71 |
| | **15.2** हिन्दी नाट्य साहित्य का विकास | 71 |
| | **15.3** हिन्दी नाटक और राष्ट्रीय चेतना | 75 |
| | **15.4** हिन्दी के प्रमुख नाटककार | 79 |
| | **15.5** कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण नाटककार | 92 |

**16. हिन्दी रंगमंच और उसका विकास** **95–107**

**16.1** नाटक और रंगमंच का अन्त:संबंध 95

**16.2** हिन्दी रंगमंच: पृष्ठभूमि 97

**16.3** हिन्दी रंगमंच की विकास यात्रा 98

**16.4** अव्यावसायिक रंगमंच 103

**16.5** समकालीन हिन्दी रंगमंच 104

**16.6** कहानी का रंगमंच 106

**16.7** हिन्दी रंगमंच की सीमाएँ/समस्याएँ 106

**17. हिन्दी निबंध का विकास** **108–118**

**18. हिन्दी आलोचना/समीक्षा/समालोचना** **119–148**

**18.1** सैद्धांतिक और व्यावहारिक आलोचना 119

**18.2** हिन्दी आलोचना का इतिहास 119

**18.3** हिन्दी आलोचना का शुक्ल पूर्व युग 120

**18.4** शुक्लयुगीन आलोचना 121

**18.5** शुक्लोत्तर आलोचना 125

**18.6** हिन्दी समीक्षा के नए मुहावरे 131

**18.7** हिन्दी समीक्षा पर पाश्चात्य समीक्षा का प्रभाव 132

**18.8** मार्क्सवादी व रसवादी समीक्षा में अंतर 134

**18.9** हिन्दी के प्रमुख आलोचक 135

**19. हिन्दी गद्य की अन्य विधाएँ** **149–156**

**19.1** हिन्दी रेखाचित्र : उद्‌भव और विकास 149

**19.2** हिन्दी संस्मरण : उद्‌भव एवं विकास 150

**19.3** हिन्दी यात्रा वृत्तांत : उद्‌भव एवं विकास 152

अध्याय
13

# हिन्दी उपन्यास का विकास

## 13.1 उपन्यास के तत्त्व

पाश्चात्य साहित्य-विवेचन में उपन्यास के छः तत्व माने गए हैं- कथानक और कथावस्तु, उद्देश्य, चरित्र योजना, भाषा शैली, संवाद योजना और देश-काल-वातावरण। कहानी के भी यही छः तत्व माने जाते हैं हालाँकि उसमें देश-काल का विशेष महत्त्व नहीं होता। नाटक में इन छः तत्वों के साथ 'अभिनेयता' या 'रंग संकेत' का सातवाँ तत्व भी जुड़ जाता है।

### कथानक और कथावस्तु

- कथानक का अर्थ है वह ढाँचा जो घटनाओं, चरित्रों तथा वर्णनों को आपस में बांधता है। यह अंग्रेज़ी शब्द 'प्लॉट' का हिन्दी अनुवाद है।
- एक अच्छे कथानक की पहचान यह है कि उसमें 'अनुपात' और 'गति' उचित हो। उचित अनुपात का अर्थ है कि न तो घटनाओं या वर्णनों की भरमार हो और न ही चरित्र इतने ज्यादा हों कि पाठक उनके साथ संगति न बैठा सके। इसी प्रकार, यदि घटनाएँ, चरित्र या वर्णन बहुत कम हों और इस वजह से पाठक को उपन्यास के आस्वादन में समस्या होने लगे तो भी यही माना जाएगा कि कथानक कमज़ोर है।
- गति का अर्थ यह है कि उपन्यास पढ़ते समय न तो अनावश्यक विराम बीच में आते हों जिनसे पाठक को बोरियत महसूस हो; न ही घटनाओं के घटने की गति इतनी तीव्र हो कि पाठक कथानक के साथ तादात्म्य न बना सके।
- अच्छे कथानक का एक विशेष गुण होता है- 'संबंध-निर्वाह'। यदि लेखक विभिन्न चरित्रों और घटनाओं को ठीक तरीके से आपस में जोड़ देता है तो यह कुशल संबंध-निर्वाह का उदाहरण है। कभी-कभी ऐसा होता है कि कथानक के कुछ तत्व आपस में असम्बद्ध दिखाई पड़ते हैं। उदाहरण के लिए, प्रसाद के नाटक 'स्कंदगुप्त' में यह समस्या दिखाई पड़ती है। कुछ समीक्षकों ने 'गोदान' उपन्यास की शहरी और ग्रामीण कथा को भी असम्बद्ध बताया है।
- यदि किसी उपन्यास या नाटक में एक से अधिक कथाएँ हों तो प्रमुख कथा को 'आधिकारिक कथा' कहते हैं जबकि शेष कथाओं को 'प्रासंगिक' या 'अवांतर' कथाएँ कहते हैं। ऐसे कथानक में यह गुण होना चाहिए कि सभी प्रासंगिक कथाएँ आधिकारिक कथा को आगे बढ़ाने में सहायक हों। यदि कोई प्रासंगिक कथा अनावश्यक महत्त्व पाकर स्वायत्त हो जाती है तो यह कथानक का बहुत बड़ा दोष माना जाता है। जयशंकर प्रसाद के नाटकों में कहीं-कहीं यह समस्या नज़र आती है। कुछ समीक्षकों के अनुसार, गोदान में ग्रामीण कथा आधिकारिक है जबकि शहरी कथा प्रासंगिक।
- **कथावस्तु** का अर्थ है कि कहानी की विषयवस्तु या सामग्री कहाँ से ली गई है? कथावस्तु का स्रोत इतिहास भी हो सकता है, वर्तमान भी और कल्पना भी। इस आधार पर कथावस्तु को 'प्रख्यात', 'उत्पाद्य' तथा 'मिश्र' में विभाजित किया जाता है। 'प्रख्यात' का अर्थ है किसी प्रसिद्ध कथा को आधार बना लेना; 'उत्पाद्य' का अर्थ है- कल्पना से नई कथावस्तु बनाना तथा 'मिश्र' का अर्थ है 'प्रसिद्ध' तथा 'काल्पनिक' तत्वों को मिलाकर कथा का निर्माण करना।

  अच्छी कथावस्तु वह होती है जो विश्वसनीय और प्रामाणिक हो। इसलिए, यदि घटनाएँ और चरित्र काल्पनिक हैं और कहानी में 'आकस्मिकता' और 'संयोग तत्व' का महत्त्व ज्यादा है तो कथावस्तु अविश्वसनीय और कमज़ोर हो जाती है। उदाहरण के लिए, गोदान की कथावस्तु अत्यंत प्रामाणिक और विश्वसनीय है क्योंकि वह जीवन के यथार्थ पर आधारित है। इसके विपरीत, देवकीनंदन खत्री के उपन्यासों की कथावस्तु अविश्वसनीय है क्योंकि वह अतिशयोक्तिपूर्ण कल्पनाओं से भरी है।

## अभ्यास हेतु प्रश्न

1. 'मैला आँचल' के महत्त्व पर प्रकाश डालिए। (टिप्पणी) **U.P.S.C. (Mains) 2017**
2. प्रेमचंद के उपन्यासों में अभिव्यक्त यथार्थवाद के स्वरूप पर प्रकाश डालिए। **U.P.S.C. (Mains) 2016**
3. 'झूठा सच' महाकाव्योचित औदात्य से सम्पन्न उपन्यास है। इस कथन का विवेचन कीजिए। **U.P.S.C. (Mains) 2015**
4. उपन्यासकार जैनेन्द्र की नारी-दृष्टि (टिप्पणी) **U.P.S.C. (Mains) 2015**
5. रेणु के उपन्यासों के आधार पर उनकी विचारधारा पर प्रकाश डालिए। **U.P.S.C. (Mains) 2014**
6. "'गोदान' तक आते-आते प्रेमचंद का आदर्शवाद से पूरी तरह मोहभंग हो जाता है।" इस कथन का परीक्षण कीजिए। **U.P.S.C. (Mains) 2014**
7. 'झूठा सच' के आधार पर यशपाल की जीवन-दृष्टि (टिप्पणी) **U.P.S.C. (Mains) 2014**
8. 'जैनेन्द्र के नारी चरित्र' विषय पर एक निबंध लिखें। **U.P.S.C. (Mains) 2013**
9. भीष्म साहनी के उपन्यास 'तमस' का महत्त्व (टिप्पणी) **U.P.S.C. (Mains) 2013**
10. आंचलिक हिन्दी उपन्यास की विशेषताओं पर सोदाहरण प्रकाश डालिए। **U.P.S.C. (Mains) 2012**
11. आंचलिक उपन्यास: शक्ति और सीमा (टिप्पणी) **U.P.S.C. (Mains) 2009**
12. "वास्तव में हिन्दी उपन्यास का प्रारंभ प्रेमचंद से होता है।" इस कथन की समीक्षा कीजिए। **U.P.S.C. (Mains) 2006**
13. हिन्दी के आंचलिक उपन्यासकार (टिप्पणी) **U.P.S.C. (Mains) 2006**
14. हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार (टिप्पणी) **U.P.S.C. (Mains) 2004**

अध्याय
14

# हिन्दी कहानी का विकास

कहानी कथात्मक गद्य की एक प्रमुख विधा है। जिस रचना में कथा का ढाँचा हो, कुछ घटनाएँ तथा चरित्र हों तथा जो आकार में लघु हो, सामान्यत: उसे ही कहानी कह दिया जाता है।

## 14.1 कहानी का परिचय

कहानी विश्व साहित्य की सर्वाधिक लोकप्रिय विधा है जो दुनिया के हर समाज में सभ्यता के आरंभिक काल से ही किसी न किसी रूप में विद्यमान है। मानवीय संस्कृति को निर्मित व संरक्षित करने में जिन साहित्यिक विधाओं ने सर्वाधिक योगदान दिया है, उनमें गीतों के अतिरिक्त कहानियों को भी महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

एक दृष्टि से हमारे समाज में कहानियों की परंपरा अत्यंत प्राचीन काल से ही दिखाई पड़ती है। उदाहरणार्थ 'जातक कथाएँ', 'पंचतंत्र की कथाएँ', 'हितोपदेश' तथा 'कथासरित्सागर' जैसी रचनाएँ इसी प्रवृत्ति का प्रतिनिधित्व करती हैं। किन्तु, वर्तमान काल में जब कहानी की बात की जाती है तो वह पारंपरिक कथाओं से अलग मानी जाती है। कहानी और कथा में मूल अंतर न तो आकार का है, न भाषा का और न ही उनमें विद्यमान तत्वों का। इनमें अंतर दृष्टिकोण का है। जहाँ कथाओं में आदर्शवादी और नैतिकतावादी दृष्टिकोण केन्द्र में होता है, वहीं आज की कहानी में यथार्थवादी दृष्टिकोण की प्रमुखता दिखाई पड़ती है।

पारंपरिक कथाओं का मूल उद्देश्य नैतिक शिक्षा प्रदान करना होता था। इसलिए हर कथा के अंत में बताया जाता था कि इससे क्या शिक्षा मिलती है? उस शिक्षा को ध्यान में रखते हुए ही कथाकार घटनाओं व पात्रों का जाल बुनता था। वह घटनाओं को एक निश्चित क्रम में इस प्रकार रखता था कि कथा के अंतिम बिन्दु पर वह नैतिक शिक्षा नाटकीय प्रभाव के साथ श्रोता या पाठक के समक्ष मुखर हो जाए। इस प्रकार की कथाओं में देश-काल की प्रामाणिकता का दबाव कम होता था और अविश्वसनीय तथा काल्पनिक घटनाओं को भी पर्याप्त महत्त्व मिलता था।

वर्तमान साहित्य में जब कहानी की चर्चा की जाती है तो उसका संदर्भ अंग्रेज़ी के 'Short Story Movement' से प्रभावित कहानी परंपरा से है। अंग्रेज़ों के शासन के दौर में जब अंग्रेज़ी संस्कृति व साहित्य से भारतीय समाज का परिचय हुआ तो वहाँ की साहित्यिक प्रवृत्तियाँ बंगाल से होते हुए हिन्दी जगत में पहुँचीं। इसके परिणामत: हिन्दी में भी पश्चिमी यथार्थवाद से प्रभावित कहानियाँ लिखी जाने लगीं। इन कहानियों की विशेषता यह थी कि इनमें यथार्थ जीवन के किसी पक्ष का उद्घाटन किया जाता था और आदर्शों व कल्पनाओं से यथासंभव दूरी रखी जाती थी।

## 14.2 कहानी और उपन्यास में तुलना

कथात्मक गद्य के अंतर्गत दो प्रमुख विधाएँ शामिल हैं- कहानी और उपन्यास। सबसे पहले, हमें इनकी समानताओं तथा अंतरों को समझना चाहिए।

दोनों विधाओं में एक ओर बहुत सारी समानताएँ हैं तो दूसरी ओर अनेक अंतर भी हैं। समानताएँ प्रमुखत: ये हैं कि दोनों गद्य विधाएँ हैं और दोनों में ही कथात्मक ढाँचा लिया जाता है। इतना ही नहीं, जो छ: तत्व (कथानक, चरित्र, वातावरण, उद्देश्य, भाषा-शैली तथा संवाद) उपन्यास के माने जाते हैं, वही तत्व कहानी के भी माने गए हैं।

इन समानताओं के आधार पर कुछ विद्वान मान लेते हैं कि कहानी व उपन्यास में सिर्फ आकार का अंतर है अर्थात् कहानी को लघु उपन्यास और उपन्यास को लंबी कहानी कहा जा सकता है। किन्तु, वस्तुत: ये दोनों विधाएँ मूल प्रकृति में भिन्न हैं। बाबू गुलाब राय तथा प्रेमचंद जैसे लेखकों ने स्पष्ट तौर पर दोनों विधाओं को अलग बताया है। बाबू गुलाब राय ने तो ऐसी समानता करने वालों पर व्यंग्य करते हुए कहा है - ''कहानी को लघु उपन्यास कहना वैसा ही होगा जैसे चौपाया होने की समानता के आधार पर मेंढक को छोटा बैल और बैल को बड़ा मेंढक कहें।''

अध्याय
15

# हिन्दी नाटक का विकास

## 15.1 हिन्दी नाटक विधा का आरंभ

हिन्दी नाट्य-साहित्य का आरंभ आधुनिक काल से होता है। हिन्दी से पहले संस्कृत और प्राकृत में समृद्ध नाट्य-परंपरा थी लेकिन हिन्दी नाटकों का विकास आधुनिक युग में ही संभव हो सका। मध्यकाल में रासलीला, रामलीला, नौटंकी आदि का उदय होने से जननाटकों का प्रचलन बढ़ा। ये लोक-नाटक मनोरंजन के प्रमुख साधन थे।

17वीं 18वीं शताब्दी के लगभग कुछ ऐसे नाटक भी लिखे गये जो ब्रजभाषा में थे जैसे प्राणचंद चौहान का 'रामायण महानाटक' व विश्वनाथ सिंह का 'आनंद रघुनंदन'। इनमें 'आनंद रघुनंदन' को हिन्दी साहित्य का प्रथम मौलिक नाटक माना जाता है। कथोपकथन, अंक विभाजन, रंग संकेत आदि के कारण आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इसे हिन्दी का प्रथम मौलिक नाटक माना है।

इस दौर के सभी नाटकों पर संस्कृत नाट्य साहित्य की छाप नजर आती है। इनकी विषयवस्तु धार्मिक व पौराणिक है। इनके संवाद पद्यात्मक हैं। श्रृंगार इनकी मूल प्रवृत्ति है।

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में पारसी थियेटर कंपनियाँ अस्तित्व में आ चुकी थीं। इनका प्रमुख उद्देश्य विभिन्न नाटकों द्वारा जनता का मनोरंजन करना था। इनके नाटकों के कथानक कभी रामायण-महाभारत से, कभी पारसी प्रेमकथाओं से और कभी अंग्रेज़ी नाटकों 'हेमलेट', 'रोमियो जूलियट' आदि से लिये जाते थे। इनमें बचकाने नृत्य, स्थान-स्थान पर गीत, शेरो-शायरी, ग़ज़ल आदि का समावेश रहता था। ऐसा ही नाटक अमानत द्वारा लिखित 'इंदरसभा' है। 'ऑपेरा' के समान इस नाटक का अधिकांश भाग गीतों से भरा है। बीच-बीच में संवाद हैं। ऐसे नाटकों द्वारा उत्पन्न कलाहीन, असंस्कृत वातावरण से क्षुब्ध होकर भारतेंदु ने हिन्दी नाटक को साहित्यिक, कलात्मक रूप देने का प्रयास किया। उनके द्वारा स्थापित इस परम्परा को जयशंकर प्रसाद ने नया स्वरूप व नयी दिशा प्रदान की। आगे चलकर, मोहन राकेश जैसे नाटककारों ने इस परंपरा को आधुनिक यथार्थ से गहराई से जोड़ा।

## 15.2 हिन्दी नाट्य साहित्य का विकास

जिस तरह हिन्दी कहानी व उपन्यास में प्रेमंचद का स्थान केंद्रीय महत्त्व का है, उसी तरह हिन्दी नाटकों में जयशंकर प्रसाद का है। उन्हें केंद्र में रखकर हिन्दी नाट्य-साहित्य को हम विभिन्न युगों में बाँट सकते हैं -

- प्रसाद पूर्व हिन्दी नाटक
- प्रसाद युगीन हिन्दी नाटक
- प्रसादोत्तर स्वतंत्रता पूर्व हिन्दी नाटक
- स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक

### प्रसाद पूर्व हिन्दी नाटक

इस काल के साहित्य को दो उप-खंडों में विभाजित किया जा सकता है- (क) भारतेंदुयुगीन नाटक, (ख) द्विवेदीयुगीन नाटक।

#### *(क) भारतेंदुयुगीन नाटक : (1850-1900 ई.)*

खड़ी बोली में प्रथम आधुनिक नाटक लिखने का श्रेय भारतेन्दु को है। भारतेंदु का युग नाट्य साहित्य का प्रथम चरण है। यह दौर सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक परिवर्तनों का दौर था। एक वर्ग पाश्चात्य संस्कृति का समर्थन कर रहा था तो दूसरा विरोध। अंग्रेज़ी साहित्य का प्रभाव पड़ रहा था। ऐसे में नयी मान्यतायें, दृष्टिकोण और सृजनात्मक दिशा देने की आवश्यकता थी। भारतेंदु ने यही किया है। भारतेंदु के नाटकों का मूल उद्देश्य मनोरंजन के साथ जनसामान्य को जागृत करना तथा उनमें आत्मविश्वास जगाना था। प्राचीन संस्कृति के प्रति प्रेम जगाने, मानवीय मूल्यों के प्रति आस्था बनाए रखने तथा

अध्याय
16

# हिन्दी रंगमंच और उसका विकास

## 16.1 नाटक और रंगमंच का अन्त:संबंध

नाटक और रंगमंच को लेकर एक लम्बे अरसे से विवाद चला आ रहा है। विवाद का आधार इतना है कि कुछ लोग नाटक को एक साहित्यिक विधा मात्र मानते हैं और रंगमंच से अलग उसकी एक पृथक सत्ता की वकालत करते हैं। वे नाटक को रंगमंच के लिए नहीं, रंगमंच को नाटक के लिए मानते हैं। दूसरी ओर रंगकर्मियों और समीक्षकों का एक ऐसा वर्ग भी है जो रंगमंच को नाटक का अनिवार्य तत्व घोषित करता है और इस सीमा तक चला जाता है कि जो खेला न जाए या खेलने के लिए न लिखा जाए, वह नाटक ही नहीं है।

अब यह सामान्य धारणा बन चुकी है कि नाटक, वस्तुत: मंच पर ही सही जिन्दगी जीता है। नाटक स्थूल भाषिक कंकाल है, प्राणशक्ति की प्रतिष्ठा उसमें मंच ही करता है। कलात्मक रंगमंच, नाटक को अतिरिक्त आयाम प्रदान कर उसे कई गुना जीवंतता प्रदान करता है। इसमें नाटककार की ही भाँति अभिनेता, दृश्य सज्जाकार, परिचालक आदि सभी का अपना-अपना योगदान होता है।

उपर्युक्त विवेचन का अर्थ यह नहीं है कि नाट्यकृति या नाटककार का स्थान गौण है। वास्तव में नाट्यकृति वह बिन्दु है जिससे रंगमंचीय प्रस्तुति का समारंभ होता है। इसलिए उसकी सत्ता प्राथमिक भी है और आधारभूत भी। नाटक के बिना रंगमंच की कल्पना नहीं की जा सकती।

संक्षेप में, नाट्य रचना और नाट्य प्रदर्शन एक दूसरे से पृथक नहीं हैं। रंगमंच के अभाव में नाट्य लेखन कुंठित हो जाता है और नाट्य लेखन के अभाव में रंगमंच की क्षमताएँ उपयोग में आने से रह जाती हैं। वस्तुत: रंगमंच और नाटक का विकास एक दूसरे से अन्तर्संबंधित है।

### भारत की प्रसिद्ध लोकनाट्य शैलियाँ/परम्पराएँ

*(यह टॉपिक आपके पाठ्यक्रम में नहीं है किंतु आपको इस संबंध में बुनियादी जानकारी होनी चाहिए कि भारत के विभिन्न राज्यों की लोकनाट्य शैलियाँ कौन-कौन सी हैं? आप इस जानकारी का प्रयोग करके अपने उत्तरों की गहराई बढ़ा सकते हैं।)*

लोकनाट्य की परम्परा प्राचीन काल से ही साहित्यिक नाटकों के साथ विद्यमान रही है। 'नाट्यशास्त्र' में लोकधर्मी और नाट्यधर्मी दोनों परम्पराओं का साथ-साथ उल्लेख मिलता है। अन्तर यही था कि नाट्यधर्मी परंपरा को अभिजात वर्ग और राजा-महाराजाओं का संरक्षण प्राप्त था, किन्तु लोकधर्मी नाट्य परंपरा स्वतंत्र रूप में जन-जीवन में फलती-फूलती रही।

भारत में हिन्दी में लोकनाट्यों के अनेक रूप प्रचलित हैं, इनमें कलात्मक उपलब्धि की दृष्टि से रासलीला, रामलीला, माँच, ख्याल, नौटंकी, स्वाँग, भगत, तमाशा, जात्रा, भवई, यक्षगान, अंकिया, नाचा, भाँड, बिदेशिया तथा करियाला आदि प्रमुख हैं।

**रासलीला**- रास मुख्यत: नृत्य और संगीतात्मक नाट्यरूप है। रासलीला का मुख्य उद्देश्य सांसारिक लोगों को भक्तिरस की उपलब्धि कराना है। रास का आयोजन प्राय: भक्तजनों द्वारा मंदिरों में किया जाता है। मंदिर के प्रांगण में ही प्राय: नाट्य मंडप बना लिया जाता है और तीनो ओर से प्रेक्षकों के लिए बैठने का स्थान होता है। रासलीला का प्रारंभ मंगलाचरण तथा अन्य शास्त्रीय विधियों से होता है। उसके बाद गोपियाँ, कृष्ण और उनके सखा प्रवेश करते हैं। एकासन पर स्थित राधाकृष्ण की झाँकी प्रस्तुत की जाती है और इसके साथ सखियों के द्वारा नृत्य और गीत प्रस्तुत होता है। रास मंडल में उतरने के आग्रह पर कृष्ण और राधा रास मंडप में उतरते हैं और वेणुवादन के साथ कृष्ण रास का समारंभ करते हैं। फिर मंडल रूप

अध्याय
17

# हिन्दी निबंध का विकास

साहित्यिक दृष्टि से हिन्दी में निबंध का उद्‌भव और विकास आधुनिक युग की देन है। राष्ट्रीय जागरण, देश प्रेम, व्यक्ति- स्वातंत्र्य, अंतर्राष्ट्रीयता, वैज्ञानिक मशीनों का प्रयोग (औद्योगिक क्रांति), आवश्यकताओं की वृद्धि, गद्य का प्रचलन, मुद्रणकला का प्रचार, समाचार-पत्रों का प्रकाशन और अंग्रेज़ी साहित्य का संपर्क आदि अनेक कारणों से साहित्य के अनेक रूपों के साथ निबंध रूप का भी आविर्भाव हुआ। इन सब कारणों से निबंध रचना को विशेष प्रोत्साहन मिला क्योंकि इस विधा के माध्यम से लेखक अपनी बात पाठकों तक सीधे पहुँचा सकता था। हिन्दी निबंध की शुरुआत उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध से मानी जाती है। निबंध की आरंभिक परंपरा में भारतेंदु युग के लेखकों का विशेष महत्त्व है क्योंकि उन्होंने विषय, शैली और भाषा तीनों स्तरों पर निबंधों में नए प्रयोग किए किंतु निबंधों को प्रौढ़ रूप द्विवेदी युग में ही प्राप्त हुआ। इस दौर में जहाँ एक ओर भाषा का मानक रूप निर्मित हुआ, वहीं दूसरी ओर चिंतन में प्रौढ़ता और शैली में परिष्कार भी हुआ। हिन्दी निबंध के विकास में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का केंद्रीय महत्त्व रहा है। उन्होंने विचार, शैली और भाषा तीनों स्तरों पर हिन्दी निबंध को उच्च स्तरीय स्वरूप प्रदान किया। जिस प्रकार हिन्दी नाटक और कविता के क्षेत्र में जयशंकर प्रसाद का विशेष महत्त्व रहा है, उसी प्रकार हिन्दी निबंध के क्षेत्र में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का विशेष महत्त्व है। इसलिए हिन्दी निबंध के विकास के केंद्र में आचार्य रामचंद्र शुक्ल को मानते हुए हम उसे तीन युगों में बाँट सकते हैं–

- शुक्ल-पूर्व युग (1850 से 1920 ई.)
- शुक्ल युग (1920 से 1940 ई.)
- शुक्लोत्तर युग (1940 से आज तक)

## शुक्ल-पूर्व युग

हिन्दी नाटक की भांति हिन्दी निबंध लेखन की शुरुआत भारतेंदु युग से हुई। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने 1868 ई. में 'कवि वचन सुधा' का प्रकाशन आंरभ किया। इसके प्रकाशन से हिन्दी लेखन विशेष रूप से प्रभावित हुआ। भारतेंदु युग के अन्य लेखकों ने भी कई पत्र-पत्रिकाएँ शुरु कीं। इनमें प्रताप नारायण मिश्र द्वारा प्रकाशित 'ब्राह्मण', बालकृष्ण भट्ट का 'हिन्दी प्रदीप', बदरीनारायण चौधरी प्रेमधन द्वारा प्रकाशित 'आनंद कादंबिनी' आदि प्रमुख हैं। उस युग में लिखे गए निबंध प्रायः इन्हीं पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते थे।

### *हिन्दी का पहला निबंधकार*

हिन्दी का पहला निबंधकार कौन है, इसके संबंध में हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों में मतभेद है। कोई सदासुख लाल के 'सुरासुर निर्णय' को हिन्दी का पहला निबंध मानता है तो कोई राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिंद' की रचना 'राजा भोज का सपना' को। अधिकतर विद्वान एकमत होकर बालकृष्ण भट्ट को हिन्दी निबंध के जनक के रूप में स्वीकार करते हैं। लेकिन आचार्य शुक्ल ने हिन्दी निबंधों की परंपरा का सूत्रपात भारतेंदु युग से स्वीकार किया जो सर्वथा उचित भी है।

### *भारतेंदुयुग*

भारतेंदुयुग के प्रमुख निबंधकारों में भारतेंदु हरिश्चन्द्र, प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमधन', लाला श्रीनिवासदास, अंबिकादत्त व्यास, राधा चरण गोस्वामी आदि हैं।

### *भारतेंदु हरिश्चंद्र*

भारतेंदु हरिश्चंद्र साहित्य में युग प्रवर्तक माने जाते हैं। उन्होंने इतिहास, पुराण, धर्म, समाज-सुधार, जीवनी, यात्रा वर्णन, भाषा आदि विषयों पर निबंध लिखें। इनके निबंधों की शैली व्यंग्यात्मक, विचारात्मक, भावात्मक, आत्मव्यंजक, वर्णनात्मक

अध्याय
18

# हिन्दी आलोचना/समीक्षा/समालोचना

## 18.1 सैद्धांतिक और व्यावहारिक आलोचना

आलोचना का अर्थ किसी कृति के मूल्यांकन से है। मूल्यांकन की प्रक्रिया अनिवार्यत: दो पक्षों पर आधारित होती है-

- ऐसे प्रतिमानों का निर्माण जिनके आधार पर किसी कृति का मूल्यांकन किया जा सके; तथा
- उन प्रतिमानों के आधार पर रचना का वास्तविक मूल्यांकन।

इन दोनों पक्षों को क्रमश: सैद्धांतिक तथा व्यावहारिक समीक्षा के नाम से जाना जाता है। हर विचारधारा के समीक्षक पहले अपना सैद्धांतिक पक्ष निर्धारित करते हैं और फिर उन सिद्धांतों के आलोक में रचनाओं का विश्लेषण तथा मूल्यांकन करते हैं। इसलिए, हर आलोचक और हर समीक्षा-धारा के भीतर ये दोनों समीक्षाएँ उपस्थित होती हैं।

आमतौर पर सैद्धांतिक समीक्षा से व्यावहारिक समीक्षा तय होती है क्योंकि सैद्धांतिक समीक्षा के आलोक में ही रचना की व्यावहारिक समीक्षा की जाती है। उदाहरण के लिए, डॉ. नगेन्द्र एक रसवादी समीक्षक हैं और यह सैद्धांतिक पक्ष उनकी कई व्यावहारिक समीक्षाओं जैसे 'कामायनी के अध्ययन की समस्याएँ' में देखा जा सकता है। कभी-कभी इसका विपरीत भी सत्य होता है अर्थात् व्यावहारिक समीक्षा किसी नई सैद्धांतिक समीक्षा को जन्म देती है।

ऐसा तब होता है जब सामाजिक राजनीतिक परिवर्तनों के कारण साहित्य की अंतर्वस्तु और बाहरी कलेवर को बदल जाता है किंतु आलोचना के सैद्धांतिक प्रतिमान नहीं बदल पाते। ऐसी स्थिति में कोई आलोचक किसी रचना की व्यावहारिक समीक्षा के माध्यम से नई सैद्धांतिक समीक्षा गढ़ देता है। उदाहरण के लिए, भारतेंदु हरिश्चंद्र और आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने लोकमंगल को केंद्र में रखकर कई व्यावहारिक समीक्षाएँ लिखीं जिन्होंने रीतिवादी समीक्षा के विरुद्ध नई सैद्धांतिक समीक्षा की नींव रखी। इसी नींव के आधार पर शुक्ल जी ने रस की लोकमंगलवादी धारणा को सैद्धांतिक रूप प्रदान किया।

कुछ आलोचक सिर्फ सैद्धांतिक आलोचना तक सीमित रहते हैं, जैसे भरतमुनि या अभिनवगुप्त जैसे पारंपरिक काव्यशास्त्रीय आचार्य। दूसरी ओर, कुछ आलोचक ऐसे भी हैं जो प्रचलित काव्यशास्त्रीय सिद्धांतों में से अपनी रुचियों के अनुसार कुछ सिद्धांत चुन लेते हैं और अपनी पूरी ऊर्जा सिर्फ व्यावहारिक समीक्षा में लगाते हैं। मलयज, शिवदान सिंह चौहान तथा नंदकिशोर नवल जैसे आधुनिक समीक्षकों को मोटे तौर पर इस वर्ग में रखा जा सकता है। अधिकांश समीक्षक कोशिश करते हैं कि वे समीक्षा के इन दोनों क्षेत्रों में अपनी लेखनी चलाएँ। आचार्य रामचंद्र शुक्ल, आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, आचार्य नंददुलारे वाजपेयी, डॉ. नगेन्द्र, डॉ. रामविलास शर्मा और डॉ. नामवर सिंह इसी वर्ग के समीक्षक हैं। अगर आचार्य शुक्ल का उदाहरण लें तो 'कविता क्या है', 'काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था' आदि निबंध उनकी सैद्धांतिक आलोचना के प्रमाण हैं जबकि तुलसी, सूर, जायसी, कबीर और पंत जैसे कवियों का मूल्यांकन उनकी व्यावहारिक समीक्षा में शामिल हैं। इसी प्रकार, 'कविता के नए प्रतिमान' डॉ. नामवर सिंह की सैद्धांतिक समीक्षा का उदाहरण है तो उनके द्वारा मुक्तिबोध और नागार्जुन जैसे कवियों का मूल्यांकन व्यावहारिक समीक्षा का उदाहरण है।

## 18.2 हिन्दी आलोचना का इतिहास

हिन्दी आलोचना के इतिहास को समझने का मूल अर्थ यही है कि हम सभी आलोचकों तथा समीक्षा-धाराओं के सैद्धांतिक मानदंडों तथा उनके द्वारा की गई व्यावहारिक समीक्षाओं को समझें।

आचार्य शुक्ल को हिन्दी आलोचना के इतिहास का केंद्रीय व्यक्ति माना जाता है। उनकी उपस्थिति को आधार मानते हुए हिन्दी आलोचना के संपूर्ण इतिहास को तीन भागों में बाँटा जाता है-

- शुक्ल-पूर्व समीक्षा
- शुक्लयुगीन समीक्षा
- शुक्लोत्तर समीक्षा

अध्याय
19

# हिन्दी गद्य की अन्य विधाएँ

## 19.1 हिन्दी रेखाचित्र : उद्‌भव और विकास

साहित्य की विधा के रूप में रेखाचित्र एक आधुनिक विधा है। इस पर चित्रकला का गहरा प्रभाव माना जाता है। रेखाओं से जीवन के विविध रूपों को आकार देने की प्रणाली की विशेषता को अपनाकर शब्दों द्वारा जीवन के विविध रूपों को साकार करने वाले शब्द-चित्रों को रेखाचित्र की संज्ञा प्रदान की गई। रेखाचित्र व्यक्ति का ही नहीं बल्कि स्थान और परिवेश का भी हो सकता है। रेखाचित्र में कथा, काव्य एवं गीत सभी के तत्व पाए जाते हैं, किंतु इनके बावजूद वह इनसे स्वतंत्र विधा के रूप में अपनी पहचान बनाता है।

हिन्दी में रेखाचित्र की शुरुआत प्रधानत: छायावाद युग से मानी जाती है। श्रीराम शर्मा, बनारसीदास चतुर्वेदी तथा महादेवी वर्मा ने रेखाचित्र के प्रारंभ एवं विकास में ऐतिहासिक भूमिका निभाई है। **श्रीराम शर्मा** का 'बोलती प्रतिमा' (1937) एक उल्लेखनीय रेखाचित्र संकलन माना गया है। **बनारसीदास चतुर्वेदी** ने संतों, समाजसेवियों, देशसेवकों और साहित्यकारों से संबद्ध अनेक यादगार रेखाचित्र लिखे। किंतु, हिन्दी में रेखाचित्र को एक स्पष्ट व पृथक् पहचान देने में महादेवी वर्मा की भूमिका ऐतिहासिक रही है। महादेवी वर्मा के प्रतिनिधि रेखाचित्र हैं-'बिन्दा' (1934), 'सबिया' (1934), 'बिट्टो' (1935), 'घीसा' (1936)।

रेखाचित्र साहित्य के विकास एवं उन्नयन की दिशा में 'हंस' का 'रेखाचित्र विशेषांक' (मार्च, 1939) उल्लेखनीय है। इस विशेषांक ने हिन्दी के रेखाचित्र लेखकों को एक सांगठनिक स्वरूप प्रदान किया एवं उन्हें अखिल भारतीय स्तर पर स्वीकृति प्राप्त करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसमें **बनारसीदास चतुर्वेदी** के रेखाचित्र अत्यंत लोकप्रिय हुए। उन्होंने 'मधुकर' के रेखाचित्र विशेषांक (1946) का भी संपादन किया। इसके बाद उन्होंने 'हमारे आराध्य' (1952), 'रेखाचित्र' (1952) नामक रेखाचित्र संग्रहों को प्रकाशित करवाया। इन रेखाचित्रों में देश-प्रेम एवं राष्ट्रीयता को प्रमुखता प्राप्त हुई है।

हिन्दी रेखाचित्र के विकास में जिस एक व्यक्ति को कभी भुलाया नहीं जा सकता, वे हैं- **रामवृक्ष बेनीपुरी**। 'लाल तारा' (1938), 'माटी की मूरतें' (1946), 'गेहूँ और गुलाब' (1950) तथा 'मील के पत्थर' (1957) इनकी प्रसिद्ध कृतियाँ हैं। यथार्थ के साथ कल्पना और भावुकता का समन्वय, विषय वैविध्य तथा शब्दों एवं वाक्यांशों का संयुक्त प्रयोग बेनीपुरी जी के रेखाचित्रों की ऐसी विशेषताएँ हैं जो पाठक की स्मृति में सदा के लिए अपना स्थान बना लेती हैं। बेनीपुरी जी ने रेखाचित्र को संवेदनात्मक एवं वैचारिक गहराई प्रदान की।

रेखाचित्र एवं संस्मरण प्राय: सहवर्ती विधाएँ मानी जाती हैं। कई रेखाचित्रों का आधार भी स्मृति होती है जो कि संस्मरण का भी आधार होती है। यही कारण है कि कई बार रेखाचित्र एवं संस्मरण में अंतर करना कठिन हो जाता है। इसी कारण कुछ रेखाचित्रों को 'संस्मरणात्मक रेखाचित्र' एवं कुछ संस्मरणों को 'रेखाचित्रात्मक संस्मरण' भी कहा जाता है। 'संस्मरणात्मक रेखाचित्र' के लेखन में **महादेवी वर्मा** की चर्चा अपरिहार्य है। 'अतीत के चलचित्र' (1941), 'स्मृति की रेखाएँ (1947), 'पथ के साथी' (1956), 'स्मारिका' (1971) और 'मेरा परिवार' (1972) उनके उल्लेखनीय 'संस्मरणात्मक रेखाचित्र' संग्रह हैं। इनमें निबंध, संस्मरण एवं कहानी तीनों के तत्व मिलते हैं। किंतु, सर्वस्वीकृत मत के आधार पर इन्हें 'संस्मरणात्मक रेखाचित्र' ही माना गया है। इनकी अंतर्वस्तु में शोषित व्यक्तियों, दीन-हीन नारियों, साहित्यकारों, जीव-जन्तुओं आदि का संवेदनात्मक चित्रण अत्यंत मार्मिक रूप में हुआ है। संस्मरणात्मक रेखाचित्रों के क्षेत्र में **शिवपूजन सहाय** का नाम भी अविस्मरणीय है। 'वे दिन वे लोग' में उनके रेखाचित्र संकलित हैं। व्यंग्य विनोद से पुष्ट मुहावरेदार भाषा में लिखे उनके संस्मरणात्मक रेखाचित्रों में ग्रामीण परिवेश जीवंत हो उठता है। कुछ विद्वानों ने इनके कुछ रेखाचित्रों को 'आंचलिक उपन्यास' की श्रेणी में भी रखा है।

रेखाचित्र के विकास में **प्रकाशचन्द्र गुप्त** का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने 'रेखाचित्र' (1940) में वस्तुओं, स्थानों आदि पर मर्मस्पर्शी रेखाचित्र संकलित किए हैं। इनके रेखाचित्रों पर विदेशी लेखकों विशेषकर ए.जी. गार्डनर के रचना शिल्प

## डी.एल.पी. बुकलेट्स की विशेषताएँ

- आयोग के नवीनतम पैटर्न पर आधारित अध्ययन सामग्री।
- पैराग्राफ, बुलेट फॉर्म, सारणी तथा फ्लोचार्ट का उपयुक्त समावेश।
- विषयवस्तु की सरलता, प्रामाणिकता तथा परीक्षा की दृष्टि से उपयोगिता पर विशेष ध्यान।
- प्रत्येक अध्याय के अंत में विगत वर्षों में पूछे गए एवं संभावित प्रश्नों का समावेश।


**Website : www.drishtiIAS.com**
**E-mail : online@groupdrishti.com**

DrishtiIAS

YouTube Drishti IAS

drishtiias

drishtithevisionfoundation

**641, First Floor, Dr. Mukherjee Nagar, Delhi-110009**
**Phones : 011-47532596, +91-8130392354, 813039235456**